बुद्धकारक धर्मों का संग्रह

- प्रो° पी° जी° योगी, पीएच° डी°

निदानकथा के प्रणयन में एक सुव्यवस्थित योजना है। कथा के आदि विन्दु पर ऐसा मानव का चित्र है, जो भौतिकता के सभी उपकरणों से सम्पन्न लौकिक प्रभासे विरोचित है। अन्तिम विन्दु पर पुनः दुसरा मानव है, जो इन समस्त भौतिक सम्पदाओं से विरत शुद्ध, बुद्ध मुक्त लोकोत्तरत्व - विहारी हो प्रभासित होता है। इन दो विन्दुओं के मध्यमें उस मार्ग का कथन है, जो आदि - विन्दु - अवस्थित मानव का अन्त - विन्दु - स्थित मानवों के परिणति में सहायक है। मार्ग कथन क्रम में क्रमिक विकास की अवस्थायें तथा तद- - तद् अवस्थाके सहायक एवं बाधक अन्य धर्म कथित है। वह आदि - विन्दु स्थित मानव है :- सुमेध-ब्राह्मण तथा अन्त विन्दु स्थित मानव है :- गौतम बुद्ध। मध्य की अवस्था है :- बोधिसत्व। एक सामान्य मनुष्य की बुद्ध के रूपमे परिणति में सहायक धर्म है :- परिमितायें तथा इसके बाधक तत्व है : मार एवं उनकी सेना। सम्यक् प्रतिपन्नता है उन पर विजय तथा बुद्धों की अवस्यंभावी साफल्यध्वज।

बोधिसत्व :- बौद्धपरम्परा में एक अपूर्व व्यक्तित्व की चर्चा उपलब्ध है। वह एक ऐसा प्राणी है, जो पूर्ण अनाशक्ति के साथ अपने सर्वस्व का परित्याग कर प्राणिमात्र के कल्याणार्थ सदासत्कर्मरत देखा जाता है। उनके सामने स्वविषयक चिन्ता पूर्णतः उन्मूलितरहती है तथा केवल उद्धृत रहती है भवना बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की। अपने शरीर मन एवं वाणी की दारूण दुःख वेदनायें उसे तनिक भी विचलित नहीं कर पाती है, पर क्षण भर का भी पर दुःख उसे असह्य हो उठता है। ऐसे अलौकिक व्यक्तित्वका नाम है :- बोधिसत्व।

बोधिसत्व दो शब्दों से निस्पन्न है। वे है :- बोधि तथा सत्व। बोधि शब्द सम्यक ज्ञान, लोकोत्तर प्रज्ञा, सर्वज्ञता, सम्यक् संम्बोधि आदिका अधिवचन है। सत्व का अभिप्राय प्राणी, मनुज, मानव आदि से है। जो सम्यक् सम्बोधिकी प्राप्ति का अभीण्सु हो। स्पष्ट शब्दों मे संम्बोधि लाभ के अनन्तर बुद्ध या सम्यक् सम्बुद्ध नाम से अभिज्ञात पुरूष विशेष के पद बुद्धत्व के लाभ की इच्छा से सम्यक् मार्ग प्रतिपन्न सत्वको बोधिसत्व कहा जाता है। इसे बुद्धत्वका अभ्यर्थी भी कहा जा सकता है।

प्राणिमात्रके मूल भूत दुःख जन्म, जरा, व्याधि एवं मरण के अशेष प्रहाण के उद्देश्य से बोधिसत्व की चर्चा प्रारम्भ होती है। तत्साधक बुद्धत्व की प्राप्ति उसका पर्यवसान है। इस प्रकार उनका जीवन - क्रम एक सामान्य पुरूष से प्रारम्भ हो कर बुद्धत्व लाभ में पर्यवसित होता है। प्रारम्भ क्षण एवं अधिगमक्षण के बीच एक लम्बी अवधि होती है। जो अनेक जन्मों के अध्व से संसरित होती है। इस अवधि में बोधिसत्व के उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत अनेक कार्य देखे जाते हैं। ये अनुत्पन्न अकुशल धर्मों के अनुत्पादन, उतपन्न अकुशल धर्मों के प्रहाण, अनुतपन्न कुशल धर्मों के उत्पादन एवं उत्पन्न कुशल धर्मों रके अभिवर्द्धन क्रम से

अनेक दोषों के मार्जन एवं गुणों के संवर्धन स्वरूप है।

अभीनीहार :- बुद्धत्व लाभ के लिए किये गये दृढ़ संकल्प को अभिनीहार कहते है। बुद्ध गुणों से पूर्णतः परिचित हो बोधिसत्व किसी बुद्ध के सम्मुख ऐसा दृढ़ संकल्प करते है। निदान कथा से प्रकट है कि सुमेधतापस के रूप मे विद्यामान बोधिसत्व ने दीपंकर बुद्ध के सम्मुख बुद्धभाव के अधिगम के लिए संकल्प किया था। दीपंकर दसबलकी बुद्धश्री को अपने चक्षुपथ में पा उनका मन इस प्रकार चिन्तनोन्मुख हो उठा :- "यदि मै चाहुँ तो समस्त चिन्तमलों को नष्ट कर भिक्षुबेष में रम्मनगर में प्रविष्ट हो सकता हूँ पर अज्ञातरुपसे चित्त मलों को विनष्ट कर परिनिवृत्त होना मेरा ध्येय नहीं है। मेरे लिये यही उचित है, कि दीपंकर बुद्ध के समान परम अभिसंम्बोधि की प्राप्ती कर धर्म नौका से जनसमूह को संसार सागरसे पार उतारने के बाद स्वयं निर्वाण प्राप्त करूँ।"

किम्मे अञ्जातवेसेन, धम्मं सच्छिकतेनिध।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, बुद्धं हेस्सं सदेवके।
संसारसोतं छिन्दित्वा, विद्धंसित्वा तयोभवे।
धम्मानावं समरूरह, सन्तारेस्सं सदैवके।। नि° क° 34

बोधिसत्व का ऐसा दृढ़ संकल्प ही अभिनीहार कहलाता है।

यह संकल्प सामान्य संकल्पों के सदृश नही होता है। इसमें छन्द अर्थात इच्छा का प्राबल्य रहता है। "जलमय सम्पूर्ण ब्राह्मण्डको अपने बाहुबल से तैर कर पार करने, संम्पूर्ण ब्राह्मण्ड में व्याप्त वेलुगुम्ब को हटा पैर से मर्दन करते हुए अग्रसर होने, तीक्ष्ण असिधार से अच्छादित समस्त पृथ्वीको पैरें से मर्दन करते पार जाने, तथा रक्तवर्ण के लहलहाते अंगारों से आवृत्त पृथ्वीमण्डलको पाद से मर्दन करते हुए बढने की दृढ़ इच्छा के समान ही महान इच्छा, अदम्य उत्साह, अनवरत यत्न, एवं सत् पर्येषणा से मुक्त यह बुद्धत्वकी प्राप्ति का संकल्प होता है।" ऐसे गुणौ से विशिष्ट होने के कारण यह अभिनीहार कहलाता है।

व्यकरण :- बोधिसत्वद्वारा बुद्ध भावके लिए ऐसा अभिनीहार किये जाने के अनन्तर बुद्ध अपने अप्रतिहत ज्ञान से उनके भविष्य को अवलोकन करते है। उनकी भूत एवं भाव्यचर्याओं का विश्लेषण करते हुए यदि उनके द्वारा उक्त पदकी प्राप्ति की सम्भावना देखते है। तो वे एतविषयक कल्याण वाक्य का उद्धरण करते है, कि 'ये इतने दिनों के अनन्तर बुद्ध होगें।' बुद्धका ऐसा कल्याण वाक्य 'व्याकरण' कहलाता है। भगवान दीपंकर ने कृत - अभिनीहार - कललपृष्ठनिष्पन्न बोधिसत्त्वको देख कहाथा कि :- 'आज से चार असंखेय्य एक लाख कल्प के व्यतीत होने पर ये गौतम नामक बुद्ध होगें।' इसके अतिरिक्त भी बोधिसत्व ने अपने बोधिसत्वजीवन के सुदीर्घ क्रम मे जिन - जिन बुद्धों का साक्षात्कार किया, उन सबो ने उनके बुद्ध होने के कल्याण वाक्य का उद्घोष किया। इन समस्त बुद्धोंद्वारा बोधिसत्वके विषय मे कहे गये ऐसे वचन व्याकरण कहलाते है।

इतो क्काप्पसतसहस्साधिकानं चतुन्नं असंखेय्यानं
मत्थके गीतमो नाम बुद्धो भविस्सति । नि° क° 38.

अभिनीहार की आवश्यकतायें :- (प्रथम) बुद्धत्व प्राप्ति के साधक की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इनके सर्वांग सहयोग से ही अभिनीहार की दिद्धि हो सकती है। वे आठ है। यथा :- मनुस्यभाव, लिंग सम्प्राप्ति, हेतु, शास्ताका दर्शन, प्रव्रज्या, गुणसम्प्राप्ति, अधिकार तया छन्दता।

मनुस्सतं लिंगसम्पत्ति, हेतु सत्थारदस्सनं।
पब्बाज्जा गुणसम्पत्ति, अधिकारो च छन्दता ।। नि॰ कथा॰ 34.

दूसरी आवश्यकता लिंग सम्प्राप्ति अर्थात पुरूष लिंग की प्राप्ती है। मनुस्य योनि में भी पुरूष ही बुद्धत्व का अधिकारी है, स्त्री, नपुंसक या उभयलिंगी नहीं। हेतु का अभिप्राय बुद्धबीज से है। मनुस्य योनि में उत्पन्न सभी पुरूष बुद्ध नही हो सकते, वरन् जो बुद्धबीज से उपेत है, उसी को बुद्ध होने की संभावन है। बोधिसत्व के सम्बन्ध में ऐसे वचन देखे जाते है :- कि 'तपस्वी सुमेध बुद्धबीज, बुद्ध अंकुर वाले है'। 'सुमेधतापसो किर बुद्धवीजं बुद्धंकुरो'। नि.कथा. 40. ऐसा होना तृतीय आवश्यकता है।

चतुर्थ आवश्यकता शास्ताका दर्शन है। कहा जाता है कि अभिनीहार की सिद्धि तब ही इष्ट है, जब वह बुद्ध के सम्मुख किया जाय। बुद्ध के परिनिवृत होने पर इसके लिए यथेष्टस्थान कोई चैत्य या बोधिवृक्ष कहा गया है।

गृहीजीवन बाधाओं से पूर्णराजपथ कहा गया है। इसमे रहते हुए बुद्धत्व लाभ संभव नही। अतः ततोद्देश्य प्रव्रजित होना पञ्चम आवस्यकता है।

गुण सम्प्राप्ति से यहाँ दो प्रकार के गुण अभिप्रेत है। वे हैं :- पाँच अभिज्ञा तथा आठ समापत्ति। इन दो से युक्त पुरूषही बुद्धत्वगवेषी हो सकता है, इससे विपरीतनहीं। अतः इसे एक मूलभूत आवश्यकता कहा गया है।

अधिकार शब्द शक्तिया बलका ध्योतक है। उक्त गुणों से उपेत ही मनुष्य बुद्ध के लिए अपने सर्वस्वका उत्सर्ग कर देता है। उसके ऐसे त्यागपूर्ण कार्यों से जिस शक्तिका संचय होता है, उसे अधिकार कहते हैं। ऐसा अधिकार सप्तम आवश्यकता के रूप में चर्चित है।

अष्टम आवश्यकता है :- छन्दता। बुद्धत्व प्राप्ति मे सहायक धर्मोंके प्रति प्रबल इच्छा, महान उत्साह, अनवरत प्रयत्न, सत् पर्योषणा आदि छन्दता के ध्योतक है। इन के होने सेही अभिनीहार की सिद्धि इष्ट समझी जाती है।

बुद्धत्व लाभ के लिए इन आठ मूलभूत धर्मों का होना आवश्यक है। कहा जाता है कि बोधिसत्व ने इनके संचय के अनन्तरही आभिनीहार किया था :- 'सुमेधतापसो पन इमे अट्ठधम्मे समोधानेत्वा बुद्धभावाय अभिनीहारं कत्वा निपज्जि'। सं.नि.अ.-50 (संयुक्त निकाय-अहकथा)

उक्त आठ धर्मों से उपेत बोधिसत्व अपने में कुछ अन्यगुणों का संबर्धन करते है'। संयुक्तनिकाय अहकथा से स्पष्ट है कि ऐसे गुणों मे चार बुद्धभूमियों तथा छ अध्याशयों का अभिवर्द्धन नितान्त आवश्यक है। उस्साह, उम्मग्ग, अवस्थान, तथा हितचारिया, नामक चार - बुद्धभूमियाँ है। इन्हें क्रमशः वीर्य, प्रज्ञा, अधिष्ठान तथा मैत्रीभावना भी कहा जाता है। इस

प्रकार नेक्खम्मज्झासय, पविवेकज्झासय, अलोभज्झासय, अदोसज्झासय, अमोहज्झासय, तथा निस्सरणज्झासय, नामक ६ अध्याशय है।

इसके अतिरिक्त ञातत्थचरिया, लोकत्थचरिया, भूतत्थचरिया, नामक तीन चर्चायें तथा स्त्री, पुत्र, राज्य, अङ्ग एवं जीवन - परित्याग विषयक पञ्च महात्याग उनके कार्यकलापों में मूर्त देखे जाते है। जातककथा, 60, 552, वेस्सन्तर द्वारा अवचरित जिन सात महा दानों का उल्लेख है, वे भी बोधिसत्व जीवन के सामान्यगुण समझे जाते हैं, दीघनिकाय अट्ठकथा, 2, 427, इन गुणों के पूर्णतः संवर्द्धन के साथ बुद्धकारक धर्मोंका संग्रह बोधिसत्व - जीवन का प्रमुख अंग है।

बुद्ध वचन :- यो खो वक्कलि, धम्मं पस्सति, सो मं पस्सति; यो मंपस्सति सो धम्मं पस्सति। धम्मं हि वक्कलि; पस्सन्तो मं पस्सति; मं पस्सन्तो धम्मं पस्सति।

वक्कलि, जो धर्मको देखता है, वह मुझे देखता है और जो मुझे देखता है, वह धर्मको देखता है। वक्कलि, धर्मको देखनेवाला मुझे देखता है और मुझे देखनेवाला धर्मको देखता है। (संयुक्त निकाय, 3:87 पृ. 341)

एव मेव खो भिक्खवे, कुल्लूपमो मया धम्मो देसितो नित्थरणत्याय, नोगहणत्याय। कुल्लूपमं वो भिक्खवे, धम्मं देसितं अजानन्तेहि धम्मा पि वो पहा तब्बा पगेव अधम्मा।

भिक्षुओ, मैं, बेड़े की भाँति पार जाने के लिए तुम्हे धर्म का उपदेश देता हूँ, पकड़ कर रखने के लिए नहीं। बेड़े की तरह धर्मको जानने वालों के लिए धर्म भी छोडने लायक है, अधर्म की तो बात ही कया ? (मज्झिमनिकाय,१,२२ पृ 179)

न ब्राह्मणस्स परनेय्यमत्थि।
धम्मेसु निच्छेय्य समुग्गहीतं।।
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो।
नहि सेट्ठतो पस्सति धम्ममञ्ञं।।
जानामि पस्समि तथेव एतं।
दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुद्धिं।।
अद्छकिख चे किञ्हि तुमस्सतेन।
अतिसित्वा अञ्ञेन वदन्ति सुद्धिं।।

विद्वान् व्यक्ति सत्यके लिए दूसरे पर निर्भर नहीं करता, विचार के बाद धर्मों में से किसी को ग्रहण नहीं करता, इसिलिए वह विवादो से परे है। सत्य को छोड़ वह किसी दूसरे धर्मको श्रेष्ठ नहीं समझता। जो किसी सिद्धान्त मे आसक्त है, वह शुद्ध नहीं होता, क्यो कि वह किसी दृष्टि मे आसक्त है। (सुत्तनिपात;4,13पृ409)

माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एक पुत्तमनुरक्खे।
एवं पि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं।।

माताजिसप्रकार जान की परवाह न कर अपने एकलौते पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति असीम प्रेम मैत्री भाव बढ़ावें। (सुत्तनिपात, 1.8.पृ 291)

नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीधकुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो।।

इस संसार में बैर से बैर कभी शान्त नहीं होते, अबैर अर्थात मैत्री से ही शान्त होते है। यही सदा का नियम है। (धम्मपद, 16,8,12,2,1,8)

बाहुकं आधिकक्कंचगयं सुनदरिकामपि।
सरस्सतिं पयांगं च अथो बाहुमति नदिं।
निच्चं पि बालो पकखन्तो कण्हकम्मो नबुझति।
किं सुन्दरिका करिस्सति किं पायागो बाहुका नदी।।
वेरि कत कि ब्बिसं नरं नहि नं सोधये पापकम्मिनं।।

बाहुका, अधिकक्क, गया, सुन्दरिका, सरस्वती, प्रयाग और बाहुमती नदी में कुकर्मी चाहे नित्य नहाए, किन्तु सुद्ध नहीं होगा। कया करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग तथा बाहुलिका नदियाँ करेंगी। वे पाप कर्मो को शुद्ध नहीं कर सकतीं। (मज्झिमनिकाय, 1,7, पृ52)

चरथभिम्खवे, चारिकं बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय,
लोकानुकम्पाय, अत्थाय हिताय, सुखाय, देवमनुस्सानं।
मा एकेन द्वे अगमित्थ। देसेथभिम्खवे, धम्मं आदिकल्याणं

मज्झेकल्याणं, परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिशुद्ध ब्रह्मचरियं पकासेथ।

भिक्षुओ, बहुजनो के हित के लिए, बहुत जनों के सुख के लिए, लोकपरदया करमे के लिए, देवताओं और मनुष्ये के प्रयोजन के लिए, हित के लिए, सुख के लिए विचरण करो। एक साथ दो मत जाओ। भिक्षुओ, आदिमेकल्याण, मध्यमेकल्याण, अन्त मे कल्याण इस धर्मका उपदेश करो। (विनय, महावग्ग, 1,10 पृ 23)

नजच्चावसलो होति न जच्चाहोति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो।।

जन्मसे न कोई नीच होता है, न श्रेष्ठ। कर्म सेही व्यक्ति नीच होता है और कर्म से ही श्रेष्ठ होता है।

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो बिहरन्ति तं भूमिं रामनेय्यकं।।

जिस गाँव, वन, तराई या मैदान मे अर्हत् विचरण करते है, वही भूमि पवित्र है। (धम्मपद,7,98)

गहकारक; दिठ्टो सि पुन गेहं न काहसि।
सब्बाते ते फासुगा भाग्गा गहकूटं विसंखतं।।
विसंखारगतं चित्तं ताण्हानं खय मज्झगा।।।

ऐ; घर बनाने वाले मन, मै ने तुम्हे देख लिया है, अब तुम घर न वना सकोगे। तुम्हारे सभी कड़ीयों भग्न हो गयी और गृहकूर विश्रृंखलित हो गया है। संस्कार रहित हो मेरा चित्त

अब तृष्णा को नष्ट कर चुका है। (धम्मपद, 11, 153, 154)

तुम्हेहिकिञ्चं आतप्पं अम्खतारो तता गता।
पटिपन्या पमोम्खन्ति झामिनो मारबन्धना।।

प्रयत्न तुम्हे ही करना है, तथागत तो केवल उपाय बताने वाले हैं। जो प्रयत्नशील होगा, वह बन्धन से छुटेगा। (धम्मपद, 20, 273)

सब्बपापस्य अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान-सासनं।।(धम्मपद 14,183)

सभी पापों को न करना, पुण्य का सम्पादान करना और अपने ऊपर नियन्त्रण रखना, यही बुद्धका धर्म है।

तस्मातिहानन्द, अत्तदीपाविहरथ, अत्तसरणा, अनञ्ञसरणा, धम्मदीपा, धम्मसरणा, अनञ्ञसरणा।

इसिलिए आनन्द, अपने को द्वीपक बनाओ, अपनी शरण में जाओ, दूसरे की नहीं। धर्म को दीपक बनाओ, धर्मकी शरण में जाओ, अन्य की नहीं। (दीघनिकाय, 2,3,पृ 80)

अर्थप्रतिशरणता, न व्यञ्जनप्रति शरणता, धर्मप्रतिशरमता, पुद्गल प्रति शरणता।

भिक्षुओ, अर्थकीशरणमें जाओ, शब्दकी नही। धर्मकी शरण में जाओ, व्यक्तिकी नही'। (महायानसूत्र संग्रह, 1 भाग पृ-332)

'इति'

भवतु सर्वमङ्गलम्

धर्म का अर्थ :- धर्म शब्द का अर्थ 'धारणकरना' है। धारणकरने का अर्थ द्विविध है, १. अपने धर्म को धारण करना। इसके अनुसार संसारके समस्त पदार्थ धर्म है। २. भय से रक्षा करना। यहाँ द्वितीय अर्थ का प्रतिपादन किया जा रहा है। स्थूलतःकायिक, वाचिक और मानसिक नैतिकता धर्म है, क्योंकि वह किसी-न-किसी भय से रक्षा करती है और जीवोंको दुःख मे गिरने से बचाती है। अतः उसका महान् यथावत आचरण करना धर्माचरण कहलाता है।

बौद्ध धर्मका परिचय :- दलाई लामा भिक्षुशासनधरसमुद्र

'मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरोपदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानञ्च चक्खुमा।।'

मार्गों में अष्टांमिक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यों मे चार पद-(चारआर्यसत्य) श्रेष्ठ है, धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपेदों (मनुष्यो) में चक्षुष्मान् (ज्ञाननेत्रधारी बुद्ध) श्रेष्ठ है। धम्मपद (मग्गवग्गो, 20,1,273)

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रतिं धम्मरसो जिनाति
तण्डक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।।

धर्म का दान सारे दोनों में बढकर है, धर्म-रस सारे रसों मे प्रबल है, धर्म मे रति सब र तियों से बढकर है, तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है ।
धम्मपद - (तण्हावग्गो - 24,21,354)

सुखो बुद्धानंउप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा संघस्स सामग्गी समग्गान तपो सुखो।।

सुखदायक है, बुद्धो का जन्म, सुखदायक है सद्धर्म का उपदेश, संघ मे एकता सुख दायक है और सुखदायक है एकता युक्त तप करना।

(धम्मपद - बुद्धवग्गो, - 16,194, पृ-62)

नात्थि रागसमो अग्गि नात्थि दोससमो कलि।
नात्थि खन्धसामा दुम्खा नात्थिसन्तिपंर सुखं।।

राग के समान अग्नि नहीं है, द्वेप के समान मल नही हैं, पंचस्कन्ध (रुप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) के समान दुःख नही और निर्वान से बढ़कर सुख नहीं है। (धम्मपद, सुखवग्गो, 15, 202,6,पृ-65)

जिघच्छापरमा रोगा, संखारा परमादुखा।
एतं ञत्वा यथा भूतं निब्बनं परमं सुखं।।

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुःख है, इसे यथार्थ रूप से जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है। (धम्मपद सुखवग्गो - 15, 203,7, पृ - 65)

आरोग्यपरमा लाभा सन्तुष्ठी परमं धनं।
विस्सासपरमा ञाती निब्बानंपरमं सुखं।।
निरोग होना परम लाभ है, सन्तोषपरम धन है।

विश्वास सबसे बडा बन्धु है, निर्वाण सबसे बड़ा सुख है। (धम्मापद, सुखवग्गो, 15, 204,8,66)

पुत्तामत्थिधनम्मत्थि इति बालो विहञ्जति।
अत्ता ही अत्तनो नथि कुतो पुत्तो कुतो धनं।।

'मेरा पुत्र है' मेरा धन है इस प्रकार मूर्ख परेशान होता है, जब मनुष्य अपना आप नहीं है तो पुत्र और धन उसके कहाँतक होगें। (धम्मपद, बालवग्गो, 5,62, पृ -21)

फेणूपमं कायमिमं विदित्वामरी चिधम्मं अभिसम्बुधानौ।
छेत्वान मारस्स पपुफ्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्सगच्छे।।

इस शरीरको फेन के समान तथा (मृग) मरीचिका के समान (असार) जान, मार के फन्देको तोड़ कर यमराज की दृष्टि से परे हो जाय। (धम्मपद, पुप्फवग्गो, 4,46,पृ 16)

नहिवेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एसधम्मो सनन्तनो।।

इस संसार में वैरे से वैरे कभी शान्त नहीं होते, अन्वैर (मैत्री) से ही शान्त होते है :- यह सदाका नियम है। (धम्मपद, यमकवग्ग, 1,5,पृ-2)

अप्पमादो अमतपरदं पमादो मच्चुनोपदं।
आपमत्तान मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।

प्रमाद न करना अमृतपदका साधक है और प्रमादकरना मृत्युपदका। अप्रमादी नही मरते, किन्तुप्रमादीतो मरे तुल्य ही है।

एतं विसेसतो ञत्वा अप्पमादन्हि पण्डिता।
अप्पमादे पमोदन्ति अरियान गोचरे कता।।

पण्डित लोग अप्रमाद के विषय में इसे अच्छी तरह जान, बुद्धद्वारा उपदिष्ट आचारण में रत हो, अप्रमाद में प्रभुदित होते है। (धम्मपद, अप्रमादवग्गो, 2,21,22, पृ-8)

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चूत मानो कखो च ओहितो।।

हड्डियोंका नगर बना है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है, जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान, और डाह छिपे हुए है। (धम्मपद, जरावग्गो, 11,150 पृ-49)

कोनुहासो किमानन्दो निच्चं पज्जलितेसति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं च गवेस्सथ।।

जबनित्य जल रहा है, तो हँसी कैसी ? आनन्द कैसा ? अन्धकार से घिरे प्रदीप की खोज क्यों नही करते ? (धम्मपद, जरावग्गो, 11, 146, पृ - 48)

नअन्तलिकखे न समुद्धमज्झे न पब्बतानंविवरंपविस्स।
नविज्जती सो जगतिप्पदेशो यत्थट्ठितो मुञ्चेच्य पापकम्मा।।

न आकाश में न समुद्रके मध्यमे न पर्वतोंके विवर में प्रवेशकर संसारमें कोई स्थान नही है, जहाँ रहकर पाप - कर्मों (केफल) से प्राणी बच सके। (धम्मपद, पापवग्गो, 9,127, पृ - 41)

न अन्त विचरखे न समुद्धमग्झे नपब्बतानंविवंरपविस्स।
न विज्जती सोजगतिप्पदेशो यत्थाट्ठितंनप्पसेहय्यमच्चू।।

न आकाशमे न समुद्रके मध्यमें, पर्वतो के विवर मे प्रवेश कर, संसार मे कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहने वाले को मृत्यु न सतावे।। (धम्ममद, पापवग्गो, 9,128,पृ-41)

अभिवादनसीकिस्स निच्चं वद्धापचायिनो।
चत्तारोधम्मा वड्दन्ति आयु वण्णो सुखं बलं।।

जो अभिवादनशील है, जो सदा बृद्धोंकी सेवा करनेवाला है,उसकी चार बातें बढती है - (१) आयु, (२) वर्ण (३) सुख और (४) बल।

आकाशे च पदं नत्थि समणो नत्थिबाहिरे।
पपञ्चाभिरता पजा निप्पपञ्चा तथागता।।

आकाश में पद चिन्ह नहीं, बाहार में श्रमण नही। (बुद्ध शासन से बाहर दूसरे धर्मो में कोई मार्ग फल प्राप्त श्रमण नही है), लोग प्रपञ्च में लगे रहते है, किन्तु तथागत प्रपंच रहित है।

आकासे च पदं मत्थिसमणोनत्थिबाहिरे।
सङ्खारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानमिज्जितं।।

आकाश में पद चिन्ह नहीं, बाहर मे श्रमण नही संस्कार साश्वत नही और बुद्धो मे चंचलता नही।

(धम्मपद, मल्लवग्गो, 18, 254, 255, पृ - 80, 81)

बहुं वे सरणं यन्ति पब्बतानि वननिच।
आराम रुकखचेत्यानि मनुस्सा भयतज्जिता।।
नेतं रवो सरवं खेतं नेतं सरण मुन्तमं।
नेतं सरण मागम्म खब्बुदुक्खा पमुच्चति।।

मनुष्य भयके मारे पर्वत, वन, आराम, (उद्यान) वृक्ष-चैत्य, (चौरा) आदिको देवता मान कर उसकी शरण मे जाते है किन्तु ये शरण मंगलदायक नही, यो शरण उत्तम नही, क्यो कि इन शरणों मे जाकर दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता। (धम्मपद, बुद्धवग्गो, 14,188,189,10, 11, पृ - 61)

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च संघञ्च सरणंगतो।
चत्तरि अरिय सच्चानि सम्मप्पञ्जायपस्सति।।
दुकखं दुकख समुप्पादं दुकखस्स च अतिक्कमं।
अरियञ्च ट्ठङ्गिकं मग्गं दुकखूप समगामिनं।।
एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरण मागम्म सब्बदुम्खापमुच्चति।।

जो बुद्ध, धर्म और संध की शरण गया है, जिसने चार आर्यसत्यों :- दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य आष्टाङ्गिक मार्गको सम्यक् प्रज्ञा से देख लिया है, यही मंगलदायक शरण है। यही उत्तम शरण है। इसी शरण को प्राप्त कर व्यक्ति सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। (धम्मपद, बुद्धवग्गो, 14, 190, 191, 192, 12, 13, 14, पृ-62)

सब्बपापस्सअकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं।।

सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचन करना, अपने चित्तको परिशुद्ध करना - यह बुद्धोकी शिक्षा है। (धम्मपद, बुद्धवग्गो, 14,183, पृ - 60)

किच्छो मनुष्यपटिलाभो किच्छं मच्चानजीवितं।
किच्छं सद्धम्मसवणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो।।

मनुष्यका जन्म पाना कठिन है, मनुस्यका जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और 'बुद्धों'का उत्पन्न होना कठिन है। (धम्मपद, बुद्धवग्गो, 14,182, 4, पृ-59)

अनेकजाति संसार सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
गहकारकं गवेसन्तो दुम्खा जाति पुनप्पुनं,।।

गहकारक ! दिट्ठोसि पुनगेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसङ्खितं।।
विसङ्खारगतं चिन्तं तण्हानं खय मज्झगा।।।

बिना रूके अनेक जन्मों तक संसार में दौड़ता रहा। (इस कायारूपी) गृह को बनाने वाले (तृष्णा) को खोजते पुनः पुनः दुःख (मय) जन्म में पडतारहा। हे गृहकारक ! तृष्णे ! मैं ने तुझे देख लिया, अब फिरतू घर नही बना सकेगा। तेरी सभी कडियाँ भग्न हो गई, गृहका शिखर गिरगया। चित्त संस्कार रहित हो गया। अर्हत्व (तृष्णाक्षय) प्राप्त हो गया। (धम्मपद, जरावग्गो, 11,153,154, पृ - 50)

ते झायिनो साततिका निज्चं दल्ह - परक्कमा।
फुसन्ति धीरा निब्बानं योग कखेमं अनुत्तरं।।

सतत् ध्यान का अभ्यास करने वाले, नित्य दृढ़, पराक्रमी, बीर पुरूष परम पद योग - क्षेम का लाभ करते है।

धर्म : Sanskrit

धर्म :- (ध्रियते लोको ऽनेन, धरति लोकं वा धृ+मन) 1:- कर्तव्य, जाति, सम्प्रदाय आदिके प्रचलित आचार का पालन, 2:- कानून, प्रचलन, दस्तुर, प्रथा, अध्यादेश, अनुविधि, 3:- धार्मिक या नैतिक गुण, भलाई, नेकी, अच्छेकाम (मानव अस्तित्व के चार पुरूषार्थों में से एक) कु° 5-38, दे° 'त्रिवर्ग' भी, एक एव सुद्धध्धर्मो निधनेडप्यनुयतियः- हि.1165, 4:- कर्तव्य शास्त्र विहित आचरण क्रम, षषांशवृत्तेपि धर्म एवः श. 5-4, मनु. 1-114. 5:- अधिकार, न्याय, औचित्य, या न्याय साम्य, निस्पक्षता, 6:- पवित्रता, औचित्य शालीनता। 7:- नैतिकता, नीतिशास्त्र, 8:- प्रकृति, स्वभाव, चरित्र :- मा°116, प्राणि, जीव, 9:- मूल , गुण, विशेषता, लाक्षणिकगुण (विशिष्ट) विशेषता :- वदन्ति वर्ण्या वर्ण्यानां धर्मकर्मं दीपकं बुध :- चन्द्रा ० 5-45। 10:- रीति, समरूपता, समानता। 11:- यज्ञ। 12:- सत्संग, भद्र - पुरूषोंकी संगति। 13:- भक्ति, धार्मिक भावमग्नता। 14:- रीति प्रणाली। 15:- उपनिषद 16:- ज्योष्ठ पाँण्डव युधिष्ठिर 17:- मृत्यु का देवता यम। सम - अङ्ग :- गा सारस, - अधर्मो (पुं द्वि -व) सत्य और असत्य, कर्तव्य और अकर्तव्य, विद(पु) मीमांसक जो कर्मो के सही या गलत मार्ग को जानता है, - अधिकरणम् 1. विधिका प्रशासन, 2. न्यायालय, - अधिकरणिन (पु) न्यायाधीश, दण्डनायक, - अधिकार, 1:- धार्मिक कृत्यो का अधीक्षण - श. 1, 2:- न्याय - प्रशासन, 3:- न्यायाधीस का पद, - अधिष्ठानम-न्यायालय, अध्यक्षः, न्यायाधीश, 2. विष्णुका विशेषण, - अनुष्ठानम् धर्म के अनुसार आचरण, अच्छा आंचरण, नैतिक चाल - चलन,

अपेत (वि) जो धर्मविरूद्ध हो, दुराचारी, अनीतिकर, अधार्मिक (तम्) दुर्व्यसन्, अनैतिकता, अन्याय - अरण्यम्, तपोवन, वन जिस में सन्यासी रहते है - धर्मारण्यं - प्रविशंति गजः - श. 1-33, - अलीक (वि) झुठे चरित्र वाला - आगमः धर्मशास्त्र, विधि - ग्रन्थ, - आचार्य :- 1. धर्म शिक्षक, 2. धर्मशास्त्र या कानून का अध्यापक, - आत्मज;- युधिरिष्ठर का विशेषण, - आत्मन् (वि) न्यायशील, भला, पुण्यात्मा, सद्गुणी, - आसनम् न्यायका सिंहासंन, न्याय की गद्धी, न्यायाधिकरण न संभावित मध्य धर्मासनमध्यसितुम् - श. ६, धर्मासनाद्विशतिवासगृहं नरेन्द्रः उत्तर 1-7, इन्द्र : युधिरिष्ठिर का विशेषण, - ईशः यम का विशेषण - उत्तर (वि) अतिधार्मिक, जो न्याय धर्मका प्रधान पक्षपति हो, निष्पक्ष और न्यायपरायण धर्मोत्तरं मध्यमाश्रयंन्ते - रघु. 16-7, उपदेश ; 1 - धर्म या कर्तव्य की शिक्षा, धार्मिक या नैतिक शिक्षण, 2. धर्मशास्त्र, कर्मन् (नपु) कार्यम्, क्रिया, कर्तव्य कर्म, नीतिका आचरण। धर्मपालन, धार्मिक कृत्य या संसार। 2. सदाचरण - कथादरिद्र : कलियुग, - कायः बुद्धका विशेषण - कीलः अनुदान, राजकीय लेख या शासन - कोतुः बुद्ध का विशेषण - कोशः :- षः धर्मसंहिता, धर्मशास्त्र - धर्मको षस्यगुप्तये - मनु . 1-99 - क्षेत्रम्। 1. भारतवर्ष (धर्मकी भूमि) 2. दिल्ली के निटक का मैदान, कुरूक्षेत्र (यहाँ ही कौरव पाण्डवों

का महायुद्ध हुआ था) - धर्म क्षेत्रं कुरूक्षेत्रे समवेता युयुद्धत्सव :- भग .111, घटः बैशाख के महीने नें ब्राहम्ण को प्रतिदिन दिये जानेवाले - सुगन्धित जलका घड़ा, चक्रभूत (पु) बौद्ध या जैन, - चरणम्, चर्चा कानून का पालन, धार्मिक कर्तव्यों का सम्पादन - कु° 7-83, - चरिन् (वि°) भद्रव्यवहार करनेवाला, कानून का पालन करने वाला, सद्गुणी, नेक - रघु° 3-45, (पु°) संन्यासी चारिणी 1. पत्नी 2. पतिव्रता सती साध्वी, पत्नी - चिन्तनम्, चिन्ता भलाई या सद्गुणो का अध्ययन, नैतिक कर्तव्यो का विचार, नीति - विमर्श, जः 1:- धर्म से उत्पन्न वैध, पुत्र, असली बैटा तु° मनु° 9-1072 2. - युधिष्टिर का नाम, - जन्मन् (पु°) युधिष्टिर का नाम - जिज्ञासा धर्म सम्बन्धी पुछताछ, सदाचरण विषयक पृच्छा - अथातोधर्म जिज्ञासा - जै°, - जीवन (वि°) जो अपने वर्ण के नियमानुसार निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन करता है, (नः) वह ब्राह्मण जो दूसरों के धर्मानुष्ठान में सहाय्य प्रदान कर अपनी जीविका चलाता है, - ज्ञ(वि°) सही बातको जाननेवाला, नागरिक तथा धार्मिक कानूनों का जनकार - मनु° 7-141, 8-179, 10-127। 2. न्यायशील, नेक पुण्यात्मा, - त्यागः अपने धर्मका त्याग करने वाला, धर्मच्युत, - दाराः (पु° व° व°) वैधपत्नी - स्त्रीणां भर्ता - धर्मदाराश्च पुंसां - म° 7-18, - द्रोहिन् (पु°) राक्षस, - धातुः बुद्ध का विशेषण, - ध्वज : ध्वजिन् (पु°) धर्म के नाम पर पाखंण्ड करने वाला छद्मवेशी, नन्दन : युधिष्टिरका विशेषण - नाथ : कानूनी अभिभावक वैध स्वामी, नाभःविष्णु का विशेषण - निवेशः धार्मिक भक्ति, - निष्पत्तिः (स्त्री) कर्तव्य का पालन, नीति- पालन, धार्मिक अनुष्टान, - पत्नी वैधपत्नि, धर्मपत्नी - रघु ° 2-2, 20, 72, 8-7, याज्ञ 2-128, पथः भलाई का मार्ग, चाल चलन का सन्मार्ग, - पर (वि°) - धर्म परायण, पुण्यात्मा, नेक भला, - पाठकः नागरिक या धार्मिक कानूनों का अध्यापक, - पालः कानून का रक्षक (आल° से इसे 'दंड' कहते है), दण्ड, सजा, तलवार, - पीड़ा कानूनका उलंघन करना, कानून के प्रति अपराध, पुत्र : - 1. धर्मसम्मतपुत्र, (जो कर्तव्य ज्ञानकी दृष्टि से उत्पन्न किया या माना गया हो केवल कामवासना का परिणान न हो), 2. युधिष्टिर का विशेषण - प्रवक्तृ (पु) 1. धर्मका व्याख्याता, कानुनी सलाहकार, 2. धार्मिक - शिक्षक, धर्मप्रचारक,- प्रवचनम् 1. कर्तव्य विज्ञान - उत्तर 5-23, 2. धर्मकी व्याख्या करना, (नः) बुद्धका विशेषण - वा (वा) विजिक : 1. जो अपने सद्गुणों से व्यापारी की भाँति लाभ उठाने का प्रयत्न करता है, 2. लाभदायक व्यवसाय को करने वाले व्यापारी की भाँति जो पुरस्कार पाने की इच्छा से धार्मिक कृत्यों का सम्पादन करता है, - भगिनी 1. वैधभगिनी, 2. धर्म गुरुकी पुत्री 3. धर्म बहन, अनुरूप धार्मिक कर्तव्यों का पालन करते हुए जिसको वहन मान लिया जाता है, - भागिनी साध्वीपत्नी, - भाणक : व्याख्यानदाता जो महाभारत तथा भागवत आदि ग्रन्थोंकी व्याख्या सार्वजनिक रूपसे अपने श्रोताओं के सामने रखता है, - भ्रातृ (पु) 1. धर्म शिक्षाका सहपाठी, धर्म का भाई, 2. वह व्यक्ति जिसके अनुरूप धार्मिक कर्तव्यें का पालन करते हुए, भाई मान लिया जाता है, - महामात्रः धर्ममंत्री, धार्मिक मामलों का मन्त्री, - मूलम् नागरिक या धार्मिक कानूनों का नीव, वेद, - युगम् सतयुग, - कृतयुग, - यूपः विष्णुका विशेषण, - रति (वि) भलाई और न्याय में प्रसन्नता

प्राप्त करने वाला, नेक, पुण्यात्मा, न्यायशील - रघु° 1-23, - राज्(पु°) यमका विशेषण, राजः 1. यम, 3. जिन, 3. युधिष्ठिर, और 4. राजा का विशेषण, - रोधिन् (वि) 1. कानून के विरूद्ध, अवैद्ध, अन्याय 2. अनैतिक, - लक्षणम्, .धर्म का मूल चिन्ह, 2.वेद (णा) मीमांसादर्शन-लोपः। 1. धर्मभाव, अनैतिकता, कर्तव्य का उल्लंघन - रघु° 1-76, - वत्सल(कि) कर्तव्यशील, धर्मात्मा, - वर्तिन्(वि°) न्यायपरायण, नेक, वासरः पूर्णिमा का दिन, - वाहनः 1. शिवका विशेषण, 2. भैसा (यमकी सवारी), विद्(वि°) (नागरिक तथा धर्म विषयक) कर्तव्य का ज्ञाता, विधिः वैध उपदेश या व्यादेश, विप्लवः कर्तव्य का उल्लंघन, अनेतिकता, - वीरः(अतं°श्रं°ले) भलाई या पवित्रता के कारण उत्पन्न वीर रस, शोर्य - सहित पवित्रता का रस, रस° में निम्नांकित उदाहरण दिया गया हैः- सपदि विलेयमेतु राज लक्ष्मीरुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधाराः, अपहरतुतरां शिरः कृतान्तो ममतु मतिर्न मवागपेतु धर्मात्। 1. वृद्ध (वि°) सद्गुण व पविभता की दृष्टि से आगे बढा हुआ (बुढ़ा) - कु ° 5-16, वातंसिकः वह जो अपने आपको उदार प्रकट करने की आसा में अवेधरूपसे कमाये हुए धन को दान कर देता है - शाला 1. न्यायालय, न्यायाधिकरण, 2. धर्मार्थ संस्था, - शासनम्, - शास्त्रम् धर्म संहिता, न्यायाशास्त्र, हिं° 1-17, यज्ञ° 1-5, शील (वि°) न्यायशील, पुन्यात्मा, सदाचारी या सद्गुणी, संहिता धर्मशास्त्र (विशेषरूप से मनु, याज्ञवल्म्य, आदि ऋषियों द्वारा प्रणीत स्मृतियाँ), सङ्ग, 1. सद्गुण या न्याय से अनुराग या आसक्ति 2. पाखंण्ड, - सभा - न्यायालय, सहायः धार्मिक कर्तन्यों के पालन करने में सहायक साथी या साझीदार । धर्मतः (अन्य) (धर्म +तसिल्) 1. धर्म के अनुसार, नियमानुकूल, सही तरीके से, धर्मपूर्वक, न्यायके अनुरूप, 2. भलाई से नेकी के साथ, 3. भलाई या नेकी के उद्देश्य से। धर्मयुः(वि°) (धर्म+युः) 1. सद्गुण सम्पन्न, न्यायशील, पुण्यात्मा, नेक। धर्मिन् (वि°) (धर्म+इनि) 1. सद्गुणों से युक्त, न्यायशील, पुण्यात्मा, 2. अपने कर्तव्यों को जानने वाला 3. कानून का पालन करनेवाला 4.(समास के अंत में) किसी वस्तु के गुणो से युक्त - प्रकृति का, विशिष्ट गुणों से युक्त - षट्सुताः, द्विजधर्मीणः मनु, 10-14, कल्पवृक्षफलधर्मी कांक्षितम् - रघु° 11-50 (पु°) विष्णुका विशेषण।

संकेताक्षर-सूचि

कु - कुमार संभव
दे° - देशिका
हि° - हितोपदेश
मनु - मनुस्मृति
चन्द्रा - चन्द्रालोक
मा - मातंगलीला
याज्ञ - याज्ञवल्कयस्मृति
शा° - शकुन्तलानाटक
रघु - रघुवंश
उत्त - उत्तरामचरित
महा° - महाभारत